उद्‌भव

(द्वितीय सर्ग)

(मराल या श्रृंगार हार छन्द)

जगत में तर्क शास्त्र के स्त्रोत, न्याय दर्शन के आदिम तीर्थ[1] ।
हुए हैं गौतम ऋषिवर विश्रुत, उटज[2] उनका था विद्या तीर्थ ।
शरद्वत थे उनके प्रिय पुत्र, परम मेधावी और कुशाग्र ।
सभी सीखी विद्याएं तूर्ण, अस्त्र विद्या का ज्ञान उदग्र ।। १ ।।

वड़ी थी धनुर्वेद में लगन, विविध थे सिद्ध उन्हें दिव्यास्त्र ।
पढ़े सव वेद और वेदांग, नहीं पर रुचिकर थे अति शास्त्र ।
दीप्त देखा शारद्वत धाम[3] हो गये, शङ्कित अति पुरुहूत[4] ।
ऋद्धियाँ देखीं ऋषि की नव्य, पुण्य सञ्चय तप जात प्रभूत ।। २ ।।

बुलायी जानपदी सुकुमार, गोत्रभिद[5] ने रच लिया उपाय.।
हुए संकट के स्त्रोत ऋषीश, बनो शम्बर[6] के शत्रु सहाय ।
उतर आयी द्युति आश्रम मध्य, मध्य था जिसका शोभन क्षीण ।
ध्यान करने मुनिवर का भङ्ग, भङ्गिमा मोहक भाव प्रवीण ।। ३ ।।

अमल जाती थी वाला जिधर, लजाती थी नव कलिका पंक्ति ।
सुरभि - हर होता मत्त समीर, खिंची आती थी षट्‌पद पंक्ति ।
कुन्द कलिका से दिखते दशन, सुमौक्तिक विखराता मृदु हास्य ।
नव्य-किशलय निभ थे युग-अधर, मधुरिमा का मोहक था लास्य ।। ४ ।।

अरुण थे तरुणी के सुकपोल, वरुण का पाश लग रहा हार ।
मसृणता करती थी निर्णीत, न मृण्मय है यह शुभ आकार ।
ऋणी थे हरिणी के भी नयन, कलापी[7] मोहित देख कलाप ।
और तरु भी तरुणी का गात्र, छिपाते थे मानो चुपचाप ।। ५ ।।

कठिनता धरते थे वक्षोज[८], गात्र था सारा किन्तु मृदिष्ट ।
पृथीयस सा घन जघन प्रदेश, बना परिमण्डल एक विशिष्ट ।
सुतनु की थी अति निम्ना नाभि, बनाती थी तनिमा कटि रम्य ।
निम्नगा[९] सी लहराती चाल, जगाती तृष्णा परम अशम्य ।। ६ ।।

देख मुख मुदित कुमुदिनी हुई, म्रदित था मादकता का मान ।
मान वायसवत निज स्वर रूक्ष, मौन पिक हुए सुना जब गान ।
प्रकृति कर डाली पूर्ण विमुग्ध, झुकी पुष्पित हर डाली हृष्ट ।
दृष्ट होता सारा भव भव्य, मनोभव[१०] से होता आकृष्ट ।। ७ ।।

विवुध[११] कन्या को वहाँ विलोक, लोक भूले ऋषिवर परलोक ।
विवुध[१२] ने खोया क्षण को वोध, हुए विवुधाधिप[१३] आज अशोक ।
विषमशर[१४] शरद्वान शरहीन, हुए गिर पड़ा भूमि पर चाप ।
हुए षड्वर्ग जयी परिभूत, विषमशर ने ताना जव चाप ।। ८ ।।

हुए उत्फुल्ल विलोचन युगल, लोच नव कमल तन्तु सी देख ।
मदिरता दल पर अङ्कित किया, मृदुलता का किसने आलेख ।
सुधा का इस वसुधा पर स्रोत, उतर आया कैसे अभिराम ।
तृषा हरने मन की निःशेष, ताप को देने पूर्ण विराम ।। ९ ।।

मराली ज्यों मानस की शुभ्र, त्रिपथगा[१५] की ज्यों चञ्चल मीन ।
चपल चेष्टाओं से चुपचाप, चेतना को लेती थी छीन ।
न यौवन वन में दिखा अपूर्व, प्रकृति इतनी थी कभी न रम्य ।
पूर्व आशा[१६] सी प्रातःकाल, अरुणिमा फिरती यहाँ सुरम्य ।। १० ।।

अतनु[१७] आभा का निर्झर दिव्य, अतनु[१८] का स्वर्णिम ज्यों आवास ।
देख तनु मध्या का शुभ रूप, मोहिनी का होता आभास ।
एक अम्बर धारिणी मनोज्ञ, कर रही शम्बर[१९] वैरि प्रसार ।
धारिणी[२०] पर अम्बर[२१] क्या उतर, दिव्यता दे करता उपकार ।। ११ ।।

कुसुम ज्यों परिजात का नव्य, मृदुलता ज्यों नन्दन की आज ।
मृदुलता क्या घर आयी रुप, विपिन में विधुकर रही विराज ।
विना श्रम आश्रम का परिवेश, किया रजयुक्त धार वह वेश ।
निभृत[२२] योजना हुई थी सिद्ध, अशनिभृत[२३] प्रमुदित हुए विशेष ।। १२ ।।

चरणगति जानपदी की रुचिर, चारुता का करती विस्तार ।
तार हृत्तन्त्री के वज उठे, मोह का करे कौन प्रतिकार ।
कारणा[२४] कारण हुए प्रतीत, करण[२५] नियमन के सभी उपाय ।
कर न रण मन से कहते चले, रणित होते नूपुर समुदाय।। १३ ।।

पधारीं क्या अलका से आप, सघन अलकावलि है वपु हेम।
मदिरता मन्दिर सा तनु दिव्य, स्वयं रति देख मनाती क्षेम ।
किए मतवाले सारे सत्व, कौन तुम हो क्या है मन्तव्य ।
करो मत वाले यहाँ विहार, करो प्रस्थान जहाँ गन्तव्य ।। १४ ।।

वन श्री से हो परम विमुग्ध, रम्यंता का करने आस्वाद ।
भ्रमण करने आ निकली मुने, नेत्रयुग को देने आह्लाद ।
सत्य ही कहा देवि ने अहा, नेत्रयुग को देने आह्लाद ।
पर्यटन करतीं अटवी बीच, सुरभि सी देतीं दिव्य प्रसाद ।। १५ ।।

मोद का हेतु शुभग सौन्दर्य, मानता आया अव तक मोघ ।
किन्तु यह तृषा और उत्ताप, वासना का उठता यह ओघ ।
विरज जिस मन में कभी न उठी, न किञ्चित कुछ पाने की चाह ।
आज यह भाव स्रोत उद्दाम, फूट पड़ने को माँगे राह ।। १६ ।।

व्यग्रता तृषा और उत्ताप, न मानो इनको मनो विकार।
प्रकृति से होना एकाकार, न जानो मुनि चेतन की हार ।
प्रकृति का भी तो विशद विकास, रहा है धाता[२६] को चिर कान्त ।
सृजन का अविरल भव्य प्रवाह, रोककर रहता कौन प्रशान्त ।। १७ ।।

प्रकृति को करे न यदि स्वीकार, पुरुष तो कहाँ रहेगी सृष्टि ।
न दृढ़िमा यदि मृदिमा से मिले, न सम्भव होगी शुभ रस वृष्टि ।
व्योमजा को भी लाए खींच, रसा[२७] पर भी ऐसा है सार ।
मनुज से मिलता कभी अलभ्य, मानता अम्बर तक उपकार ।। १८ ।।

विधाता ने है अब तक रची, न कोई वस्तु प्रयोजन हीन ।
कान्त वन जाओ आओ पास, चित्त को क्यों करते हैं दीन ।
नहीं सारी च्युतियाँ हैं पतन, न तन है मात्र अस्थि का ढेर ।
व्यर्थ है नीरस ऊहापोह, हुई जाती है दुःखमय देर ।। १९ ।।

प्रकृति वास्तव में हुई प्रधान, सुकृति करती वेधा[२८] की विद्ध ।
न मन सह सका विकृति की मार, मार[२९] हो गया निकृति में सिद्ध ।
पुलक पूरित था पूत शरीर, प्रकम्पित हुआ उदित था स्वेद ।
श्वास गति कर देती थी प्रकट, मथित मन्मथ से मन का भेद ।। २० ।।

न मन माना मृदिमा की माप, चले लेने मुनि निकला ओज ।
नमन में झुका कला निधि[३०] तुल्य, वरानन[३१] ज्यों हो अरुण सरोज ।
सुरभि के झौंके सी अभिनंद्य, गयी फिर सुर तनया सुर धाम ।
रचाकर सुरत नया मधुषिक्त, रिक्तकर ऋषि का अर्जित धाम ।। २१ ।।

त्याग शर और शरासन अजिन, शरद्वत चले छोड़ वह क्षेत्र ।
ग्लानियुक्त मानस आनन म्लान, क्षोभ से जलते थे युग नेत्र ।
गिरा जो शर समूह में शुक्र, शुक्र[३२] सम ऋषि का द्विधा विभक्त ।
बने बालक बालिका मनोज्ञ, तात जिनके हो चुके विरक्त ।। २२ ।।

भरतवंशी भूपति कुरुराज, वीर शान्तनु मृगया के हेतु ।
सानुचर अटवी में फिर रहे, चन्द्रवंशी यश के वे केतु ।
दिखे शिशु युगल कुञ्ज के मध्य, धनुष शर और अजिन[३३] के पास ।
मृदुल अवयव थे दीप्त शरीर, अमित मोहक थे जिनके हास ।। २३ ।।

खोजने पर न मिले पितु मात, विधाता का विधान ही मान ।
मानधन लाये दोनों बाल, बाल रवि हिमकर कान्ति समान ।
धनुर्वेदी द्विज इनके जनक, कर लिया इतना तो अनुमान ।
रहा वेष्टित रहस्य में सदा, किन्तु जननी का अनुसन्धान ।। २४ ।।

कृपा विधि की ही इसको समझ, कृपायुत होकर कौरव भूप ।
हस्तिनापुर लौटे पुरमान्य, साथ लाये शिशु युगल अनूप ।
किया पालन पोषण उपयुक्त, रखे कृप और कृपी अभिधान ।
उभय हैं मेरी ही सन्तान, लोक को देते नृप अभिज्ञान ।। २५ ।।

योग बल से वन में ही वृत्त, लिया ऋषि ने यह सारा जान ।
और कृप को आकर चुपचाप, ज्ञान - आकर ने दी पहचान ।
वेद दर्शन ज्योतिष इतिहास, सभी विद्याएं करीं प्रदान ।
शीघ्र ही धनुर्वेद सरहस्य, बनाया सुत आयुधी महान ।। २६ ।।

शरोद्भव[३४] सम शारद्वत हुए, प्रीत दोनों पर सदा शरण्य[३५] ।
तेज दोनों के पितु का पड़ा, वेत्र भू पर जनि भूमि अरण्य ।
और दोनों थे अपराजेय, ब्रह्मचर्यारत व्रती अखण्ड ।
इन्द्र हित लड़े जहाँ गाङ्गेय[३६], इन्द्रसुत विमुख लड़े कृप चण्ड ।। २७ ।।

बने वे कुरु कुल के आचार्य, धर्म के साथ सिखाते अस्त्र ।
यती पर थे द्विज सदा अकाम, रहे साधारण भोजन वस्त्र ।
काल क्रम से पाण्डव कुरु बन्धु, बने उनके आश्रम के छात्र ।
वृष्णि अन्धक वंशी सब वीर, हुए यादव अनुकम्पा पात्र ।। २८ ।।

प्रणत होते राजा धृतराष्ट्र, भीष्म देते थे उनको मान ।
विदुर से प्रज्ञ महानीतिज्ञ, प्राप्त करते थे उनसे ज्ञान ।
राजलक्ष्मी की द्युति से दूर, बना पुर बाहर सौम्य कुटीर ।
कमलदलवत वसु[३७] से अस्पृष्ट, यम-नियमरत रहते द्विज धीर ।। २९ ।।

सदा मानस में पूर्ण प्रसाद, राजती थी सर्वदा प्रशान्ति ।
कान्तिमय आनन पूत शरीर, मिटाती सन्निधि उनकी भ्रान्ति ।
अप्रतिहत थी गति वेदों वीच, अस्त्र विद्या पर था अधिकार ।
व्यसन था वितरित करना ज्ञान, दीनजन का करना उपकार ।। ३० ।।

सदा शारद्वत पिता समान, धारते थे इषु दृढ़ कोदण्ड ।
पुष्ट वपु और समुन्नत शीर्ष, सार-मय थे दोनों भुजदण्ड ।
और भगिनी भी कृपी वदान्य, धारती पुण्डरीक सी कान्ति ।
अमल आभायुत आनन दिव्य, अपरिमित जिसपर राजित शान्ति ।। ३१ ।।

न अति दीर्घा थी तनुकेशिनी, सभी अवयव जिसके अनवद्य ।
धर्म की प्रतिमा परम पवित्र, वंद्य आचार वचन थे हृद्य ।
विविध पूजा विधियाँ श्रुतिकर्म, वृतादिक अग्निहोत्र उपवास ।
देवि को थे सारे अभ्यस्त, विपुल फैली थी कीर्ति सुवास ।। ३२ ।।

नित्य प्रातः पूजा के अर्थ, देवि चुनती वाटिका प्रसून ।
वेदना तरु की कर अनुभूत, चित्त उनका होता था दून ।
खुले में करतीं थीं वे होम, वचाकर पादप के घन कुञ्ज ।
न दे खग शावकगण को कष्ट, यज्ञ से उठा धूम का पुञ्ज ।। ३३ ।।

देवि हँस कर सहतीं थी सभी, वहुल वानरगण के उत्पात ।
मृगों को दुलरातीं थीं नित्य, चुनातीं शिखियों को प्रति पात ।
अवनि पर अनसूया सी अपर, अद्रितनया की या अवतार ।
कृपा मय होती कृपी प्रतीत, क्षमा धृति पावनता आगार ।। ३४ ।।

द्रुतविलम्बित

उपवनस्थ महावट-तुंगता,
वहुविहंगम - आश्रय - शीलता ।
विपुल-शाख-जटा-धरता बड़ी,
चकित हो लखतीं कृपानुजा[३८] ।। ३५ ।।

सह प्रचण्ड मरीचि[३६] शराग्र सी,
पवन के बहु झेल प्रहार भी ।
शिर उठा नभ में वट गर्व से,
अडिग भू पर है यति सा खड़ा ।। ३६ ।।

सन्दर्भ सूची

१. गुरु, २. कुटीर, ३. तेज, ४. इन्द्र, ५. इन्द्र, ६. कामदेव, ७. मोर, ८. पयोधर, ९. नदी, १०. कामदेव, ११. देवता, विद्वान, १२. विद्वान, १३. इन्द्र, १४. तीक्ष्ण बाणों वाला, कामदेव, १५. गंगा, १६. दिशा, १७. विशाल, १८. कामदेव, १९. कामदेव, २०. पृथ्वी, २१. आकाश, वस्त्र, २२. गुप्त, २३. इन्द्र, २४. यंत्रणा, वेदना, २५. इन्द्रियाँ, २६. ब्रह्मा, २७. पृथ्वी, २८. ब्रह्मा, २९. कामदेव, ३०. चन्द्रमा, ३१. सुन्दर मुख, ३२. शुक्राचार्य, ३३. काला मृगचर्म, ३४. कार्तिकेय, ३५. शिवजी, ३६. कार्तिकेय, ३७. जल, धन, ३८. कृपी, ३९. किरण।